

## जनजातीय कला में प्रकृति चित्रण

डॉ० रीना सिंह\*

### शोध सारांश

भारत में अनेकों जनजातियाँ वर्तमान में भी ऐसे भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करती हैं जहाँ सभ्यता का प्रकाश नहीं पहुँचा है तथा वे संस्कृति की प्रायः प्राचीनतम अवस्था का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन जनजातियों को आदिम समाज, आदिवासी, वन्य जाति, गिरिजन एवं अनुसूचित जनजाति के नामों से पुकारा जाता है। ये सभी जनजातियाँ भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विविधताओं के कारण अपनी विशिष्ट पहचान बनाये हुए हैं। यह समुदाय प्रकृति के मध्य रह कर, प्रकृति से प्रेरणा लेकर अपनी लोक संस्कृति से जुड़े विविध पक्षों को अपनी कलात्मक समझ के अनुसार रंगों और रेखाओं के माध्यम से प्रकट करता रहा है। प्राकृतिक वन सम्पदा ही उनकी सम्पत्ति है और प्राकृतिक सहज जीवन ही उनका स्वभाव है। प्राकृतिक जीवन शैली, उनके विचित्र अनुभव, कौतुहल, परम्परा, सामाजिक मान्यता आदि से प्रेरणा लेकर नृत्य संगीत और चित्रों के माध्यम से प्रकट करते हैं। उनके सरल रेखांकन-संयोजन आकर्षक रंग योजना जनजातीय समुदाय के साथ ही विश्व को भी अचंभित और साथ ही आनन्द प्रदान करते हैं।

भारतीय जनजातीय संस्कृति हमारी विशिष्ट धरोहर है। देश के विभिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रकार की जनजातियाँ निवास करती हैं। जनजातियों की अपनी अलग कला एवं संस्कृति है। जनजातियों का सांस्कृतिक और सामाजिक सरोकार आधुनिकता से दूर आस्था के निकट है। इनका एक अलग संसार है जिनमें आस्था और विश्वास है। उन सबका आधार धर्म है। धार्मिक एवं सामाजिक परम्पराओं में बंधे पर्व और उत्सव जनजातीय जीवन का अभिन्न अंग है जो स्वतंत्र व समीरत रूप में प्रकट होते हैं।

**मुख्य शब्द**— जनजातीय, प्रतिनिधित्व, आदिवासी, हृदयस्पर्शी, सहिष्णुता।

### प्रस्तावना

जनजाति शब्द की उत्पत्ति या अर्थ के विषय में अलग-अलग विचारधारा है। व्युत्पत्ति शास्त्र के अनुसार अंग्रेजी शब्द tribe (जनजाति) की उत्पत्ति त्रिभुज शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ तीन अंग है। रोमवासियों के लिए tribe एक राजनीतिक संस्था के रूप में था। मानवशास्त्र के शब्दकोष में जनजाति को एक सामाजिक समूह माना गया है जो प्रायः निश्चित भूभाग में रहते हैं, जिनकी अपनी भाषा, सभ्यता तथा सामाजिक संगठन है।<sup>1</sup> इनकी अपनी ही एक संस्कृति, अपना समुदाय, कानून, व्यवस्थाएं और नियम होते हैं। जनजातीय समुदायों की कला प्रायः उनकी समग्र अर्थव्यवस्था से जुड़ी होती है। अर्थोपार्जन के लिए वनोपज—संग्रहण या कृषि करते हैं और अवकाश के समय अपनी पारम्परिक कलाओं का सृजन करते हैं। ई० आर० लीच के अनुसार जनजातीय लोग कला की वस्तुओं का उपयोग धार्मिक उत्सवों, निजी वस्तुओं की सजावट तथा मृत पूर्वजों की याद में स्मारक इत्यादि बनाने हेतु करते हैं।<sup>2</sup>

जनजातीय समुदाय जो कुछ भी बनाते हैं उसमें उपयोगिता और सौन्दर्याभिरुचि दोनों तत्वों का समावेश होता है। जनजातीय कला में रीति-रिवाज, परम्पराओं व जातीय विरासत को सुरक्षित रखते हैं। भारतीय जनजातीय कला में वृक्षिका (woman and Tree motif) चिन्ह की प्रचुरता, जो नारी और मानवतर प्रकृति के साहचर्य को निरूपित करती है। इसी प्रकार चीनी आदिवासी कला में हम घस्मर कथा रूढ़ि जिसका सम्बन्ध चन्द्रमा के गति चक्र से की है और स्पेनिश जनजातीय कला में नर-वृषभ-युद्ध की प्रचुरता पाते हैं। स्पेन की यह नर-वृषभ-युद्ध कथा रूढ़ि वहाँ के आदिम समाज के धार्मिक अनुष्ठान से व्युत्पन्न हुई है। आदिम समाज की इसी कथा रूढ़ि को पिकासो ने 'गेर्निका' नामक अपने प्रसिद्ध चित्र में परिवर्तित सन्दर्भ में रूपायित किया है।<sup>3</sup>

भारत में अधिकांश जनजातियाँ राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, असम, मिजोरम, पश्चिम बंगाल उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, मणिपुर, मेघालय आदि प्रदेशों में निवास करती हैं। सभी जनजातियाँ अपनी पारम्परिक आदि धर्म लोकविश्वास पर आधारित सांस्कृतिक परम्पराओं को मानती हैं। मूल रूप से ये जनजातियाँ प्रकृति के प्रत्येक तत्व पर्वत, वन, नदी, झरना, पेड़ पौधे, पशु-पक्षियों में परमसत्ता के अदृश्य रूप में विराजमान मानती हैं और प्रकृति की पूजा विशिष्ट अनुष्ठानों द्वारा करती है।

**ग्रह एवं नक्षत्र का अंकन** — भारतीय संस्कृति एवं कला के मांगलिक प्रतीकों में सूर्य कल्याणकारी प्रतीक के रूप में

\* सहायक प्राध्यापक, चित्रकला विभाग, डी०एस०बी० परिसर, नैनीताल।

प्रतिष्ठित है। सूर्य प्रकृति का आधार एवं जीवनशक्ति का प्रतीक है। आदिकाल से ही सूर्य अपनी अद्भुत चमक व शक्ति से मानवजाति को आकर्षित करता रहा है। प्रकृति की अद्भुत देन है सूर्य। सूर्य-पूजा की महत्ता प्राचीनकाल से ही जनजातियों में देखने को मिलती है। हाकिंस ने इन आदिम जातियों की उपासना पद्धति का विवरण प्रस्तुत किया है। कई कबीले सूर्य की पूजा करते थे जिनमें कोल, कोछ, सन्थाल, द्रविड़ों में कोड गौड ओशेन्स और टोडास आदि प्रमुख हैं।<sup>13</sup>

जनजातीय समुदाय ने सूर्य के उदय और अस्त के स्वरूप को देखा और उनके मन में कौतुहल आश्चर्य एवं दैवीय शक्ति की भावना उत्पन्न हुई होगी। सूर्य की अद्भुत चमक, ताप और ऊर्जा जो पृथ्वी पर जीवन प्रदान करने वाला थी उसके आगे नतमस्तक हो गये। उन्होंने या तो कृतज्ञता ज्ञापित करने हेतु या भय के कारण सूर्य की पूजा अर्चना आरम्भ की और रेखाओं-रंगों द्वारा विविध आकारों में सृजित किया। कोंड कबीले के लोग सूर्य को एक महान भक्ति का रूप मानकर पूजा करते थे। गौंड जाति के लोग सूर्य की पूजा नर बलि के माध्यम से करते थे। सन्थाल सूर्य को अद्भुत देव मानकर पूजते थे तथा कोल सूर्य के साथ-साथ चन्द्रमा को उसकी पत्नी व तारों को वे बच्चे मानकर पूजते थे। तेजस्विता और प्रकाश ही नहीं सूर्य आरोग्य का भी प्रतीक है। सूर्य कांति और आभा, पोषण और कल्याण का प्रतीक है।

भारतीय कला परम्परा में सूर्य के साथ-साथ चंद्रमा को भी चित्रित किया जाता है। सूर्य जहाँ बाह्य प्रकाश का प्रतीक है वहीं चन्द्रमा आन्तरिक प्रकाश का द्योतक है। यह वनस्पतियों में मिठास भरने वाला है। चन्द्रमा कल्पना शक्ति का प्रतीक है। जनजाति समाज में सूर्य और चन्द्रमा को ईश्वर की दो आँखों के प्रतीक के रूप में भी चित्रित किया जाता है।

जनजातीय संस्कृति में प्रकृति के हम उपादानों का अपना महत्व है। जनजातियों ने घने वनों के मध्य रहते हुए प्रकृति और वनस्पति के अनेक रंग और आकार को देखा और उसके रहस्यमयी तरीके से संचालित होने की प्रक्रिया से अचम्भित भी थे। हर क्षण परिवर्तित होते प्रकृति के रूप को दैवीयशक्ति मान कर उनकी अराधना की। प्रकृति से सृष्टि की उत्पत्ति जीवन तथा विकास जीवन की निरन्तरता के सूचक हैं। वन-पर्वत, नदी-नालों, एवं हरे-भरे खेतों से प्रकृति के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं व जनजातीय समाज की सम्पन्नता, समृद्धता, एवं सांस्कृतिक वैभव के द्योतक रहे हैं।

**वृक्ष और वनस्पति का अंकन** — जनजातीय के जीवन में वन-वृक्ष और वनस्पति सर्वत्र व्याप्त है। उनके बिना उनका कोई अनुष्ठान पूर्ण नहीं होता। वृक्षों से भोजन प्राप्त करते हैं और जड़ी-बूटियों से अपना उपचार करते हैं। बाँस से बांसुरी, शहनाई, घुघना तथा अन्य वाद्य बनाकर उनसे संगीत का आनन्द लेते हैं। उनके सभी अनुष्ठानों में वृक्ष और वनस्पति ही जनजातीय संस्कृति के मूल स्रोत हैं। उनके सभी देवी-देवता वृक्षों में निवास करते हैं और इसलिए ये जनजातियाँ जिस वृक्ष पर आश्रित हैं प्रायः उनकी पूजा आस्था और विश्वास के साथ करते हैं। कोल जनजाति तीर कमान से उड़ती चिड़िया का शिकार करते हैं। अतः वे तीर कमान बनाने वाले बाँस की पूजा करते हैं। चेरी, पठारी, वैगा वर्ग की जनजातियाँ महुआ, पीपल, नीम, सेमल आदि वृक्ष को शुभ व देवता का वास मानकर उनके नीचे पूजा अनुष्ठान करते हैं। जनजातीय समुदायों की कला प्रायः उनकी समग्र अर्थव्यवस्था से जुड़ी होती है। वे अर्थोपार्जन के लिए वनोपज-संग्रहण या कृषि करते हैं और अवकाश के समय अपनी पारम्परिक कलाओं का सृजन करते हैं।

मनुष्य और वनस्पति की अन्तर्निर्भरता तो मानव के जन्म के साथ ही बन गई। जनजातियों के दैनिक जीवन में वृक्ष के समान ही वनस्पतियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है और सामाजिक, धार्मिक, पारम्परिक कृत्यों में वनस्पतियों का सन्दर्भ आ ही जाता है। दैनिक जीवन में प्रयोग आने वाली सब्जियाँ, भूमि के अन्दर पाये जाने वाले कन्दमूल भी भोज्य पदार्थ में प्रयोग में लाते हैं। वनस्पति न केवल जनजातियों के लिए बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति, जीव-जगत के लिए प्रकृति का अनुपम वरदान है। जनजातीय कलाओं में वृक्ष वनस्पति, प्रतीक, मिथक और अनुष्ठान के रूप में मौजूद है। वृक्ष वनस्पति लता, फूल, पत्ते जनजातीय कलाओं का अनिवार्य विषय ही नहीं बना बल्कि आस्था के साथ ही अलंकरण के सारे अभिप्राय इन्हीं से लिए जाते हैं।

**पशु पक्षी का अंकन** — जनजातीय कलाकारों के द्वारा बनाये गये चित्र उनके जीवन का हिस्सा हैं। उनके आस-पास दिखने वाली चिड़िया, मोर, हिरण, खरगोश, बिल्ली, गाय आदि जनजातियों के लिए सिर्फ पशु पक्षी ही नहीं हैं उनके समाज कृषि और घर से गहरा सम्बन्ध रखते हैं। ये जनजाति पशु-पक्षियों के व्यवहार, रूप, चाल-ढाल से भली भांति परिचित होते हैं। और ये सभी स्मृति का हिस्सा होती हैं। इसलिए जनजाति प्रायः पशु पक्षियों के चित्र बनाते हैं। पशु-पक्षियों की आकृतियाँ उनकी स्मृति के आधार पर आकार लेती हैं। ये आकार यथार्थ न होकर सरल रेखाओं और रंगों के माध्यम से सृजित करते हैं। चित्रों के सृजन में उनकी अनोखी कल्पनाशीलता के कारण ये जादुई असर डालते हैं। जनजातियों का जीवन कठोर परिश्रम के साथ ही जंगल में हर पल खतरे की आशंका उन्हें सदैव ही अपनी सुरक्षा के लिए चिन्तित बनाये रखती है। अतः अवकाश के समय वे अपनी पारम्परिक कला का सृजन करते हैं या नृत्य और संगीत के माध्यम से तनाव दूर करते हैं।

जनजातीय महिलाओं द्वारा एक साधक के समान अत्यन्त तल्लीनता एवं एकाग्रता के साथ घर की दीवारों, आंगन को अलंकरण द्वारा सजाया जाता है। जनजातीय समाज के प्रत्येक घर कलात्मक और सौन्दर्यबोध से भरा होता है। जनजातियों द्वारा अपनी परम्पराओं, मान्यताओं के अनुसार भित्तिचित्रों का सृजन किया जाता है। पारम्परिक रेखाओं और रंगों द्वारा फूल पत्ते, पशु-पक्षियों का अंकन किया जाता है। जनजातीय कलाओं में बनायी जाने वाली आकृतियाँ सरल हृदयस्पर्शी और प्रतीकात्मक होती हैं। अभिव्यक्ति के विविध आयाम जनजातीय महिलाओं की उंगलियों के स्पर्श से जीवन्त हो उठते हैं। जहाँ पर भी उपयुक्त जगह मिली वहीं गाय, बैल, बकरी, मुर्गा-मुर्गी, चिड़िया, आदमी-औरतें आदि चित्रित करते हैं। इनकी बनायी आकृतियों में परिपक्वता है। इनका कला सृजन सहज उमंग और उत्साह से परिपूर्ण है।

जनजातीय कला में विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले मानव समूहों पर भौगोलिक परिस्थितियों के प्रभाव से उनके रहन-सहन विचारों में भी भिन्नता पायी जाती है। क्षेत्र विशेष की जीवन पद्धति, परम्परा और प्राकृतिक परिवेश से मिलकर जनजातीय कलाओं का स्वरूप निर्मित होता है। इसलिए स्थानीय विशेषताओं के कारण कला में रूपात्मक विषयगत और तकनीकी विशेषतायें उत्पन्न होती हैं। उत्तरी भारत के किन्नौर, लाहोल स्फीति, लद्दाख आदि क्षेत्रों में एक प्रसिद्ध धार्मिक और आनुष्ठानिक चित्रकला और शिल्प है थानका। थानका का बौद्ध-धर्म अनुयायियों के लिए धार्मिक महत्व है। जनजातीय क्षेत्रों के गोपाओं और कुछ विशिष्ट घरों में यह अमूल्य निधि सुरक्षित है तथा इन क्षेत्रों के कुछ महान कलाकार इस कला को बड़ी श्रद्धा, आस्था और भक्ति के साथ निष्पादित कर रहे हैं। थनका वस्तुतः चित्रकला अभिलेख तथा धर्माचरण का संगमस्थल है, त्रिवेणी है। मूल रूप से यह वह चित्रकला है जिस के द्वारा शक्यमुनि, बोद्धिसत्व, पदमसंभव और प्रसिद्ध बौद्ध-सम्राटों आदि की जीवन-घटनाओं और जातक कथाओं का सगुणात्मक सजीव चित्रण होता है तथा वे अभिलेख के रूप में सुरक्षित रहता है।<sup>6</sup> सामान्य लोगों के लिए थनका अमूल्य कलाकृतियाँ हो सकती हैं परन्तु बौद्ध धर्मानुयायियों के लिए धार्मिक महत्व अत्यधिक है। थनका मूलतः भोटी भाषा के शब्द थडका का तद्भव रूप है। जहाँ इसका अर्थ-चित्रपट है। ऐसे चित्र गोपाओं और बौद्ध विहारों में चित्रित होते हैं। परन्तु जब ये कपड़ों पर बनाए जाते हैं तो ये थनका कहलाते हैं। जिन्हें सफाई से लेपेट कर सदियों के लिए नहीं सदा के लिए सुरक्षित रखा जाता है। कपड़े के फलक पर होने के कारण ही ऐसी चित्रकला को थडका का नाम दिया गया है। थनका चित्रों में विषय भगवान बुद्ध, बोद्धिसत्व और अन्य देवता होते हैं। इसके साथ ही पृष्ठभूमि में वृक्ष, पशु, फल-फूल, पत्ते भी धार्मिक विश्वासों के अनुकूल सृजित किये जाते हैं। धर्म और प्रकृति का उत्कृष्ट संयोजन थनका पट चित्रों में देखा जा सकता है।

परम्परा किसी भी समाज की संस्कृति पर निर्भर है। युगों-युगों से चले आ रहे रीति-रिवाजों को ही परम्परा कहते हैं। कला एवं परम्परा का क्रम अतीत से संबंधित है। प्राचीन मान्यताओं में भी कला परम्पराएं रही हैं। परम्पराओं में कलात्मक आयामों को प्रतीकों के द्वारा स्वरूप दिया जाता है।<sup>7</sup> चित्रांकन की परम्परा जनजाती समुदाय में प्राचीन समय से चली आ रही है। परम्परा का सम्बन्ध संस्कृति के अविच्छिन्न रूप से है। जिस प्रकार शताब्दियों तक निरन्तर विचारों के मंथन से संस्कृति का विकास होता है उसी भाँति परम्परा भी पीढ़ी दर पीढ़ी के अनुभवों का संचित कोष है।<sup>8</sup> जनजातीय समुदाय भी पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी परम्पराओं का निर्वाहन करते आ रहे हैं। उनके लिए प्रकृति ईश्वर का वरदान है क्योंकि प्रकृति के जितने ही पास जायें, उसके अनंत रूप जानने को मिलते हैं, प्रकृति के एक एक रहस्य अत्यंत गहन होते हैं। वृक्ष जितने प्रकार के होते हैं उतने ही प्रकार के उनके पत्ते, फूल, फल और छाल भी होती है। इसी तरह डालों, डंठलों, टहनियों, जड़ों, तनों, काँटों आदि रूपों में वृक्षों के अनगिनत आकार और उतनी ही रंगछटाएँ।<sup>9</sup> प्रकृति का यह परिवर्तन अगाध है, अद्भुत है।

जनजातियों द्वारा अंकन भित्तिचित्रों में मूलभाव तो धार्मिक, सामाजिक और आनुष्ठानिक होता है। इसके साथ ही दैनिक जीवन के चित्र भी बनाये जाते हैं। उसमें विरक्ति और उदासीनता का कोई स्थान नहीं है, क्योंकि वह आध्यात्मिक, धार्मिक और सामुदायिक प्रतीकों से भरी हुई है। यह कला जनजाति समाज और आम आदमी के नजदीक है। यह कला यथार्थपरक रसास्वादन में अधिक सहायक और अस्तित्ववादी है। जनजाति कला बिना किसी प्रलोभन, लाभ या यश की कामना किये निरन्तर गतिमान होती रहती है।

जनजाति समुदाय ने प्रकृति के रमणीय वातावरण में रह कर उसके रहस्यों को अपने कला संसार का माध्यम बनाया। उनकी भावना, संवेग एवं मनोविचार उसके द्वारा सृजित चित्रों के माध्यम से आत्मसात किये जा सकते हैं। जनजातीय कला मानव जीवन की आत्मा है। यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष देने वाली है। अभय और मंगल की कामना, सुख एवं समृद्धि की संभवनाओं से परिपूर्ण पर्व में सृजित या अंकित चित्र जनजातीय जीवन की आस्था और वैचारिक परम्परा को दर्शाते हैं। वर्तमान में जनजातीय समुदाय ने अपने सृजन में पारम्परिकता के साथ नवीन प्रयोग को महत्व दिया है जैसे जूट, बाँस से अनेकानेक आकर्षक शोपीस बनाये। साथ ही जनजातीय जीवन के अभिप्राय को ज्यामितिक आकार में चित्रित कर पर्स, सामान रखने का स्टैंड, पंखा, लैम्प शेड, फूलदान, फाईलो, बर्तनों आदि को सौन्दर्यता प्रदान की है। लौह शिल्प, मिट्टी

काष्ठ शिल्प, गोदना आदि में भी नवीन प्रयोग हो रहे हैं। जनजातीय कला को संरक्षण और प्रोत्साहन की आवश्यकता है जिससे भारत के इन विशिष्ट समुदायों का सम्मान भी बना रहे और आर्थिक, सामाजिक स्थिति में भी सुधार हो। इससे जनजातीय समाज में सहृदयता, सहिष्णुता और सुख शान्ति का विस्तार होगा।

#### संदर्भ ग्रंथ

1. गुप्ता नीलिमा, भारतीय लोककला (छत्तीसगढ़ के संदर्भ में) स्वाति पब्लिकेशन 34, सैन्ट्रल मार्केट, अशोक विहार दिल्ली, पृष्ठ-15
2. भारती कासलीवाल मीनाक्षी, ललित कला के आधारभूत सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, प्लॉट-1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर, पृष्ठ-23
3. वही
4. सिंह दिलीप, प्राचीन भारतीय कला में प्रकृति पूजा, स्वाति पब्लिकेशन, 34, सैन्ट्रल मार्केट, अशोक विहार, नई दिल्ली पृष्ठ-16
5. वही
6. मौलू राम ठाकुर, हिमाचल की लोक कलाएं और आस्थाएं, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नेहरू भवन, 5, वसंत कुंज नई दिल्ली, पेज-36
7. डॉ मावडी एम0एस, भारतीय कला सौन्दर्य, तक्षशिला प्रकाशन, 98-ए हिन्दी पार्क, दरियागंज, नई दिल्ली पृष्ठ-76
8. वही पृष्ठ-76
9. बर्वे प्रभाकर, कोरा कैनवास, ललित कला अकादमी, रवीन्द्र भवन, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली, पृष्ठ-183